ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.- 93-97
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

1. नीतीश कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

2. डॉ. चंदन कुमार
शोध निर्देशक एवं सह लेखक,
सह प्राध्यापक, वाणिज्य महाविद्यालय,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

Corresponding Author :

नीतीश कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

'तिलचट्टा' नाटक में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ और स्वरूप

शोध–सार : प्रतीकात्मक शैली में रचित 'तिलचट्टा' नाटक समाज में व्याप्त कई स्तरीय विद्रूपताओं को एक साथ उद्घाटित करता है। समकालीन नाटककारों में मुद्राराक्षस ने अपने विशिष्ट शिल्प और नाट्यशैली की वजह से साहित्यिक जगत में अलग स्थान प्राप्त किया है। राजनीति, समाज, प्रेम, यौन कुंठा आदि हर विषय पर उन्होंने सम्यक चिंतन के उपरांत अत्यधिक गंभीर–विचारोत्तेजक नाटकों की रचना की है। 'तिलचट्टा' भी अपनी जटिल संरचना की वजह से पाठकों और दर्शकों का आकर्षित करता है। उक्त नाटक का अंत जिस प्रकार होता है वह दर्शकों के हृदय में कई गंभीर प्रश्नों को जन्म देता है। नाटक की यह विशेषता है कि अंत तक यह बात पकड़ में ही नहीं आती कि नाटककार ने उक्त कृति में केंद्रीय विषय किसे बनाया है। जिस क्षण यह लगता है कि नाटककार ने सामाजिक भ्रष्टाचार को उद्घाटित करने के लिए नाटक की रचना की है ठीक उसी के अगले क्षण ऐसा प्रतीत होता है कि यौन कुंठा ही नाटक की केंद्रीय विषय वस्तु है।

बीज–शब्द :– यौन कुंठा, सामाजिक, राजनीतिक, स्त्री–पुरुष संबंध, यथार्थ, भ्रष्टाचार, अवैध संबंध, त्रासदी।

मुद्राराक्षस समकालीन हिंदी नाटककारों में प्रगतिवादी चिंतक हैं। वे सोच–परम्परा, ब्राह्मणवादी व्यवस्था के आलोचक, क्रांतिदर्शी चिंतक एवं दलित, शोषित, पीड़ित वर्गों के हित साधक के रूप में अपनी अलग पहचान रखते हैं। ऐसे तो उनका मूल नाम सुभाष चंद्र आर्य (गुप्ता) था लेकिन उनके शिक्षक और हिंदी के प्रख्यात संपादक और साहित्यकार डॉ. देवराज ने जब उनका लेख अपनी पत्रिका 'युगचेतना' में मुद्राराक्षस के छद्म नाम से छापा तभी से उन्होंने अपना साहित्यिक नाम 'मुद्राराक्षस' रख लिया। मुद्राराक्षस एक लेखक ही नहीं थे बल्कि वे एक

ऐसे प्रगतिवादी बुद्धिजीवी थे जो वंचित समाज की समस्या के समाधान के लिए जीवन भर संघर्षरत रहे।

उनके नाटकों में मूलतः मार्क्सवाद, लोहियावाद और आंबेडकरवाद की प्रगतिधर्मी अनुगंज सुनाई पड़ती है। अपनी इसी विचारधारा के कारण वे आजीवन सामाजिक न्याय के पक्ष में लिखते रहे।

'तिलचट्टा' समकालीन नाटकों में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने भारतीय समाजिक विडंबना का प्राकृतिक लहजे में बड़ा ही व्यंग्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है।

'तिलचट्टा' के विषय में नाटककार मुद्राराक्षस ने लिखा है कि "'तिलचट्टा' को अपने-आप में एक विकास कह सकता हूँ। रेडियो के लिए एक प्रयोगशील नाटक 'काला आदमी' लिखा गया था। इसी 'काला आदमी' का परिमार्जन थी कहानी 'काक्रोच'। दरअसल कहानी रूप में प्रकाशित 'काक्रोच' प्रस्तुत नाटक का ही ड्राफ्ट था।"[1] स्पष्ट है कि 'तिलचट्टा' का क्रमिक विकास हुआ है। 'काला आदमी', 'कॉकरोच' और 'तिलचट्टा' किसके प्रतीक हैं, इसे भी समझना आवश्यक है। दअरसल 'तिलचट्टा' के अवलोकन से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि नाटक की बनावट समकालीन मानवीय त्रासदी के इर्द-गिर्द ही घूमती है। स्वयं मुद्राराक्षस ने लिखा भी है "'तिलचट्टा' मानवीय नियति की एक ऐसी त्रासदी है जिसे निरन्तर अपने मानवीय-ऐतिहासिक आधार की तलाश है। नाटक में चरित्र नहीं यह त्रासदी ही प्रमुख है, सत्य है। त्रासदी ही एक ऐसी प्रामाणिक इकाई है जिससे इस रचना का नाटकीय इतिहास बनता है। प्रारम्भ से अन्त तक यह त्रासदी ही है जो लगातार मंच पर रहती है। बाकी सब कुछ, पात्र, प्रतीक, देश, काल, घटनाएँ सब सिर्फ उसकी वहाँ मौजूदगी को प्रामाणिकता देनेवाले दस्तावेज़ हैं।"[2] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि नाटककार के लिए आलोच्य नाटक में सबसे महत्त्वपूर्ण त्रासदी है।

समकालीन दौर में अनेक स्तरों पर मनुष्य समाज जूझ रहा है। यौन कुंठा, अवैध शारीरिक संबंध, नाजायज औलाद, दाम्पत्य रिश्तों में असुरक्षबोध जैसी स्थितियां आज समाज में हर ओर व्याप्त हैं। स्त्री-पुरुष के बीच सम्बन्धों में छल-प्रपंच की वजह से आज रिश्तों की गर्माहट बरकरार नहीं रही है। कामकाजी महिलाओं की दृष्टि से देखा जाए तो उनकी चुनौतियां चौतरफा हैं। उन्हें घर में पति को हर दिन यह विश्वास दिलाना पड़ता है कि वे सती-साध्वी हैं, कार्यालयों में चारों ओर से चीरती हुई, उन्हें अन्दर तक बेधती हुई नजरों से खुद को बचाना पड़ता है। सड़कों, बाजारों में भी अपने शरीर की हर तरफ से हिफाजत करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में पति-पुरुष का अविश्वास उन्हें और अंदर तक कुरेद कर रख देता है। 'तिलचट्टा' में तो पुरुष फिर भी बहुत हद तक सहिष्णु है लेकिन कई अवसरों पर उसकी ईर्ष्या स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। वह कई मौकों पर अपनी स्त्री पर शक करता है। जिससे उसकी स्त्री नाराज भी होती है।

पूरे नाटक में एक विशेष प्रकार का अविश्वास दाम्पत्य रिश्ते में नजर आता है। केशी और देव पूरे नाटक में किसी भी स्थिति में सहज नहीं दिखते। दरअसल यह समकालीन युग की विवशता को रेखांकित करता है। हर पुरुष यह चाहता है कि उसकी पत्नी केवल उससे प्रेम करे और उसकी बांहों के घेरे में रहे। लेकिन आज बढ़ती महंगाई के दौर में यह संभव नहीं है कि वह स्त्री को नौकरी पर जाने से रोक सके। कामकाजी स्त्रियों के साथ किस तरह का व्यवहार उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है यह सर्वविदित है। देव जानता है कि 'डॉक्टर' और उसकी पत्नी केशी के बीच एक ऐसा रिश्ता है जो सामाजिक रूप से नैतिक नहीं कहा जा सकता है। केशी बार-बार अपने और डॉक्टर के यथार्थ संबंधों को उसके समक्ष जाहिर भी करती है। उसकी बातें सुन कर ही देव झल्ला कर कहता है- "मुझे डॉक्टर से नफरत है! आई हेट हिम! मुझे तुम्हारे अस्पताल से भी नफरत है। आई हेट!"[3] ऐसा लगता है कि केशी अपने और देव के निजी सम्बन्धों से संतुष्ट नहीं है। इसी लिए कुरेद-कुरेद कर उन बातों को भी देव को बताती है जो किसी भी पति के लिए अपमानजनक कहे जा सकते हैं। दरअसल नाटक में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि केशी गर्भवती है, यह

बात अलग है कि भूमिका में नाटककार इस तथ्य पर भी प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। चूंकि नाटक के हिसाब से वह गर्भवती थी इसलिए यह सवाल बरकरार रहता है कि उसके गर्भ में पल रहा बच्चा किसका है। देव यद्यपि इस बात को स्वीकार करता है कि वह नामर्द है फिर भी सामाजिक रूप से अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए वह चाहता था कि केशी के पेट में पल रहे बच्चे का जन्म हो। जब केशी यह कहती है कि– "देव––मुझे माफ कर सकोगे, देव? मैंने –– बच्चा गिराने के लिए इंजेक्शन ले लिया।"[4] यह सुनकर वह स्तब्ध रह जाता है। ऐसा लगता है कि केशी सायास देव को चोट पहुंचाना चाहती है या उसके अस्तित्व को झकझोरना चाहती है। इसी लिए वह बार–बार ऐसी बात कहती है जो पुरुष के हृदय पर आघात करती है। वह कहती है– "जानते हो, देव, डॉक्टर ने इंजेक्शन दिया––कहने लगा कूल्हे पर लगाऊंगा। यहां तक साड़ी उठा दी थी–नाभी की ओर इशारा।"[5] स्वाभाविक ही है कि किसी भी पति को ऐसी बातें नागवार गुजरेगी परन्तु केशी इतने पर ही नहीं रुकती बल्कि उसे और जलील करने के लिए कहती है– "मेरा चेहरा लाल हो गया। डॉक्टर पाजी है। आधा घंटा लगा दिया इंजेक्शन लगाने में। और परेशान ही करता चला गया––ब्लाउज मैंने पकड़ रखा था––उसने खींच कर फाड़ दिया था––"[6] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि केशी घटना का वर्णन पीड़ा के संताप से या क्रोधित होकर नहीं कर रही बल्कि रस लेने के उद्देश्य से कर रही है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह उक्त प्रसंग को आनंदित हो कर सुना रही है दूसरी ओर उसका पति जब ये सारी घटना सुनता है तो आवेश में आ जाता है और दनदनाते हुए नींद की गोलियां खा लेता है जो अंततः उसकी मृत्यु का कारण बनती है।

व्यवस्थागत भ्रष्टाचार पर भी इस नाटक में बहुत सूक्ष्मता से नाटककार द्वारा विचार किया गया है। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता और गैर बराबरी को वे व्यवस्था की नाकामयाबी मानते हैं। उन्होंने इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि जिनके पास इस देश में पैसे हैं वे ही बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने भ्रष्टाचार कर के खूब धन कमाया है वे ही केवल सुख से रह पाते हैं। दरअसल उनका मानना है कि ऐसी विद्रूप व्यवस्था ही पिंडारियों और आतंकवादियों का निर्माण करती है। मुट्ठी भर लोगों ने देश के असीमित संसाधनों पर कब्जा कर रखा है और जो मेहनतकश वर्ग है वह आज भी दो रोटी को तरस रहा है। स्वप्न में पिंडारी देव की पत्नी को पकड़ लेते हैं और उसे उनके चंगुल से छुड़ाने के उद्देश्य से वह उनके पास जाता है तब वे उसका गला घोंटना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में देव उन्हें नैतिकता का पाठ पढ़ाने की कोशिश करता है और कहता है कि कभी तुमलोगों ने इस जुर्म के विषय में सोचा है। इस संदर्भ में 'दूसरा पिंडारी' सोचने की प्रक्रिया को याद करते हुए एक बुद्धिजीवी को उद्धृत करता है कि वह कैसे सोचता था। वह कहता है– "एक बार मैने देखा था- वह बुद्धिजीवी था-कुर्सी के ऊपर आराम से बैठ जाता था - दोनो टांगे सामने की मेज पर फैला लेता था। होंठो में बहुत मोटी सी बीड़ी दबा लेता था और बीच-बीच में अपने कान के पीछे खुजाता था।"[7] उक्त पंक्तियों से वह इस बात को स्पष्ट करता है कि ऐसी भेदभावपूर्ण व्यवस्था में गरीबों के लिए सोच पाना भी असंभव है। 'पहला पिंडारी' इस तथ्य पर सहमति देते हुए कहता है– "मगर यह बिल्कुल गलत है, जी। हमें सोचना होता तो हम गला घोटने को न निकलते। हमारे पास मेज नहीं है, कुर्सी नहीं है, मोटी-सी बीड़ी भी हमारे पास नहीं हैं। उस आदमी ने हमें उल्लू बनाया है। मेज नहीं, कुर्सी नहीं, मोटी वाली बीड़ी भी नहीं- हम किस तरह सोच सकते हैं।"[8] वह आगे इस तथ्य को भी उद्घाटित करता है कि समकालीन व्यवस्था में गरीब और कमजोर अगर सोचने की कोशिश करते हैं तो पुलिस और प्रशासन उनकी सोच पर पहरा लगा देते हैं। सोचना गरीबों के लिए कितनी बड़ी त्रासदी है उस संदर्भ में 'दूसरा पिंडारी' कहता है– "(पहले को पीछे धकेलकर) और मैं एक बात और बता दूं- जुर्म की बात करके दरअसल तुम हमें धोका देना चाहते हो- तुम चाहते हो कि हम तुम्हारा गला घोटने की बजाए सोचना शुरु कर दें। हम बेवकूफ नहीं हैं। मेरे बाप ने एक बार सोचा कि वह पुलिस को बता दे कि मफतलाल खाने वाले तेल में इंजन का तेल

मिलाकर बेचता है। इसी सोचने पर पुलिस ने मेरे बाप को जेबकतरा कहकर पकड़ लिया और इतना पीटा की वह मर गया। मेरा भाई मिनिस्टर का दरबान था। उसने सोचा कि वह लोगों को बता दे कि मिनिस्टर का बेटा लड़ाई के दिनों में जवानों की जर्सियां चोर बाजार में बेच आया। मेरे भाई को किसी ने गला काटकर मार दिया और मेरी बहन उसकी खोज लेने गई तो उसका पता ही नहीं लगा। उसके बाद मैंने सोचा - बस वो आखिरी बार सोचा था - मैंने सोचा कि मैं कम से कम आगे से कुछ नहीं सोचूंगा। फिर मैंने कभी नहीं सोचा। सोचना––"[9] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि गरीब आदमी जब सोचता है और सत्य के पक्ष में अपनी आवाज बुलंद करता है तो व्यवस्था उसका ही दमन कर देती है। व्यवस्था की बागडोर शोषकों और भ्रष्टाचारियों के हाथ में होने की वजह से ही गरीबों के पास यह आजादी नहीं है कि वे सोच सकें।

वे लोग जो गरीबों का शोषण करते हैं और व्यवस्था की खामियों का फायदा उठा कर आतंकियों और विद्रोहियों के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं उन्हें ही आतंकियों से सबसे अधिक भय होता है। उन्हें हर ऐसे तत्त्व से डर लगता है जो किसी भी प्रकार उन्हें हानि पहुंचा सकता है। तिलचट्टा, कुत्ता, आतंकी आदि सब उसकी निगाह में खतरे का प्रतीक होते हैं। देव कहता है– "मफतलाल कह रहा था। वह बहुत डरा हुआ था। हवालात से आतंकवादी के भाग जाने की खबर से बहुत डरा हुआ था। बल्कि वह इस बात का इंतजार करने लगा है कि उसके नाम कोई रहस्मय लिफाफा आयेगा। जिसमें उसके मारे जाने की तारीख लिखी होगी। और दो लाख रूपया मांगा गया होगा। मफतलाल ने तीन लाख रूपये एक थैले में भर कर रख लिये थे।"[10] दरअसल दुनिया के जितने पूंजीपति हैं वे गरीबों और मजदूरों का श्रम चूस कर अकूत संपत्ति इकट्ठा कर लेने के बाद सबसे अधिक अगर किसी बात की फिक्र करते हैं तो वह है उनकी खुद की जान। ऐसे लोग अपनी जान बचाने के लिए कोई भी कीमत देने के लिए तैयार रहते हैं। देव इस संदर्भ में कहता भी है– "ऐसा हर आदमी इसी तरह के खत के इंतजार में है जिसने मफतलाल की तरह बहुत सा रूपया जोड़ रखा है।"[11] स्पष्ट है कि मुद्राराक्षस ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि पूंजीपति वर्ग अनेक प्रकार से गरीबों का धन लूटने के बाद अपनी सुरक्षा के लिए पैसे बहाने से कोई परहेज नहीं करता, जबकि गरीब आदमी इसी व्यवस्था में अस्पताल के बाहर धन के अभाव में दम तोड़ देता है। नाटककार का बार–बार इस तथ्य को उद्धृत करना कि मफतलाल का चाचा अनेक तालों के अंदर बंद रहता था, सुराख से खाने–पीने की सामग्री लेता था फिर भी उसकी मौत आग लगने की वजह से हो गई, इस बात का संकेत करती है कि पूंजीपति वर्ग शोषण कर के चाहे जितनी भी पूंजी बना ले शोषित वर्ग के लोग अवसर मिलते ही उन के साम्राज्य को आग लगा देंगे।

नाटक का अंतिम भाग बहुत संश्लिष्ट और अस्पष्ट है। समकालीन सामाजिक और निजी रिश्तों के खोखलेपन को नाटककार ने अंतिम हिस्से में अभिव्यक्त कर के बहुत से प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ दिया है। प्रेम, विवाह आदि की टूटती दीवारों को नाटककार ने नए ढंग से उद्घाटित किया है। अपने मृत पति से अधिक चिंतित केशी उस व्यक्ति के लिए नजर आती है जो दर्शकों के लिए बिल्कुल अजनबी सा है। वह काला आदमी है, बकरे की बोली बोलने वाला व्यक्ति है, डॉक्टर है या आतंकवादी है, यह कोई नहीं जानता परन्तु केशी उसकी ऐसे चिंता करती है जैसे वह उसका सबसे आत्मीय हो। इक्कीसवीं सदी के समाज में पनप रहा विवाहेत्तर सम्बन्ध उक्त प्रसंग के केंद्र में नजर आता है। उसकी सुरक्षा के प्रति वह अत्यधिक जिम्मेदारी से भरपूर व्यवहार करती नजर आती है। निम्नांकित पंक्तियां द्दष्टव्य हैं – "मैं उन्हें रोकती हूँ–आप–आप उस कमरे में चलिए–विंग की ओर इशारा करती है।"[12] जब पुलिस आती है और उसे कमरे में नहीं पाती है तब जा कर केशी को चैन आता है जो उसके द्वारा उच्चरित 'ओह' से अभिव्यक्त होता है। मृत पति की लाश को देखने की भी फुर्सत केशी नहीं निकाल पाती लेकिन उसके कमरे से भागे अजनबी की स्मृतियों में वह ऐसी

खोती है कि "चुपचाप उठकर जूते और जुराबें लेकर सीने से चिपका लेती है।"[13] स्पष्ट है कि अवैध संबंध, जो इक्कीसवीं सदी की सच्चाई बन कर उभरा है, नाटककार ने पूरे नाटक में उसकी अनेक स्थितियों से दर्शकों को रुबरु करवाया है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि 'तिलचट्टा' अपने शिल्प में एक असंगत नाटक है। आर्थिक भ्रष्टाचार की यथार्थ कथा से ले कर अवैध संबंध, यौन कुंठा तक को अपने कथ्य में समेटने वाले इस नाटक में विविध स्तर पर सामाजिक यथार्थ का नग्न रूप प्रस्तुत हुआ है। प्रतीकों में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ को मुद्राराक्ष ने बहुत करीने से बुना है। यद्यपि बहुत कुछ ऐसा है जो अंत तक अनुत्तरित रहता है और न ही कई सारी स्थितियां स्पष्ट हो पाती हैं परंतु यही नाटक की विशेषता भी है। समाज से जुड़े मुद्दों के उत्तर तलाशने की जिम्मेवारी नाटककार ने दर्शकों पर छोड़ी है। उन्होंने कुछ तथ्यों को संकेतों में उद्घाटित किया है वही उनका अभीष्ट रहा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि समाज के उस बुनियादी ढांचे को प्रश्नांकित किया गया है जिस पर वह पूर्ण रूप से आश्रित है। विवाह आदि नैतिक सामाजिक–सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रश्नों के घेरे में आए हैं तो दूसरी तरफ पूंजीपति वर्ग भी कठघरे में आया है जो सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था को चलाने का दंभ भरता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मुद्राराक्षस, तिलचट्टा, मुद्राराक्षस हिंदी साहित्य फाउंडेशन, संस्करण–2024, पृष्ठ–3.
2. वही.
3. वही, पृष्ठ–37.
4. वही, पृष्ठ–38.
5. वही.
6. वही.
7. वही, पृष्ठ–22.
8. वही.
9. वही, पृष्ठ–23.
10. वही, पृष्ठ–26.
11. वही.
12. वही, पृष्ठ–58.
13. वही, पृष्ठ–59.

•